डॉ. सुषमा सिंह

24 दिसम्बर, 1952 को जन्मी डॉ. सुषमा इन्द्रपाल सिंह छात्र जीवन में मेधावी छात्रा थीं। हाईस्कूल से लेकर एम.ए. (हिन्दी) तक वे प्रथम श्रेणी में ही रहीं। हिन्दी के अतिरिक्त गणित, तर्कशास्त्र, संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, गुजराती आदि भाषा एवं विषयों का ज्ञान भी उन्होंने प्राप्त किया है।

पिता डॉ. इन्द्रपाल सिंह और माता श्रीमती रामेन्द्रवती सिंह के उन पर अच्छे संस्कार रहे हैं।

डॉ. रमेशपाल सिंह धाकरे से उनका विवाह हुआ। उपरांत सुषमाजी ने नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज मुरादाबाद, आर.बी.एस. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगरा में अध्यापन कार्य किया। अपनी आम जिन्दगी जीते हुए उन्होंने 'पहली किरण', 'एक तुम्हारे साथ होने से' (कविता संग्रह) तथा 'दर्द के साये में', 'कुछ तो लोग कहेंगे' (कहानी संग्रह) और कुछ बाल गीत लिखे। डॉ. सुषमा सिंह विविध पत्रिकाओं से भी जुड़ी रही हैं। जैसे—साप्ताहिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग, भाषा, वागर्थ, मधुमती आदि। मौन तीर्थपीठ उज्जैन से 'विदुषी विद्योत्तमा स्त्री शक्ति सम्मान' से सम्मानित। स्नातकोत्तर महाविद्यालय में 39 वर्ष अध्यापन कार्य तथा राजा बलवंत सिंह महाविद्यालय, आगरा से प्राचार्य पद से अवकाश ग्रहण किया है।

कथा सार

'आशीर्वाद' सुषमा सिंह की प्रसिद्ध और चर्चित कहानी है। यह कहानी वर्तमान पारिवारिक दाम्पत्य जीवन का तनाव तथा पारिवारिक रिश्तों के टूटने-बनने की कहानी है। कहानी का आरम्भ भुवनेश नामक युवक के इश्कमिजाज व्यक्तित्व से होता है, जो विवाह के पश्चात भी अनेक स्त्रियों से सम्बन्ध रखता है। कहानी तब नया मोड़ लेती है जब उसे अपनी बेटी शुभांगी के निमेष से प्रेम सम्बन्ध का पता चलता है। तब उसे अपने-आप पर अधिक क्रोध होने की बजाय पत्नी कुसुम पर ही क्रोध आता है। बेटी के प्रेम-सम्बन्धों के लिए वह पत्नी कुसुम को ही दोष देता

है। एक और पुरुषी अहंकार में डूबे, ऐशोआराम की जिन्दगी जीनेवाले भुवनेश की यह कथा कहीं न कहीं पश्चाताप में डूबते हुए अपनी बेटी और निमेश के आशीर्वाद में परिवर्तित होती है। महानगरीय उच्च मध्यवर्गीय परिवार में बनते-बिगड़ते रिश्तों को व्यक्त करते हुए हमें अन्तर्मुख करती है। कहानी का परिवेश आधुनिक पारिवारिक स्थितियों को यथार्थता से प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। कहानी की सहज-भाषा शैली कहानी की मौलिकता को और अधिक बढ़ाती है।

आशीर्वाद

शुभांगी के विवाह का उत्सव है। रंग-बिरंगी साडियों एवं अन्य आकर्षक परिधानों से सज्जित तमाम स्त्रियाँ और युवतियाँ इधर-उधर मनमोहक छटाएँ बिखेरती हुई घूम रही हैं। हँसी-खुशी है, मुस्कानें हैं, खिलखिलाहटें हैं, आनन्द का सागर उमड़ रहा है, किन्त भुवनेश इस आनन्द से अछूता अपने में सिमटा-सा कन्या का पिता होने का दायित्व निभाए जा रहा था। आज उसकी नजरें हर सुन्दर स्त्री से टकराकर लौट-लौट आती थीं और यह चहल-पहल उसके लिए उलझन बनती जा रही थी।

उसे याद आ रहा था वह पहला विवाह, जिसमें वह वर वरुण के मित्र की हैसियत से सम्मिलित हुआ था। वधू मत्स्यगन्धा की एक अन्तरंग सखी थी—भावना, उसने उसे दौड़-भाग करते देख, हर गतिविधि में वधू के साथ देख, वर के जूते चोरी होने पर उससे कहा—"भावनाजी, यह भी आपका ही काम लगता है। हमने सुना है, भाभीजी की तो कोई बहन है नहीं।"

भावना ने कहा—"नहीं साहब! यह हमारा काम नहीं है। आपकी भाभीजी की कई बहनें हैं, उनके चाचा-ताऊ-बुआ-मामाजी की बेटियाँ। हाँ, हमारा सहयोग हो सकता है।" यहाँ से बातचीत का जो सिलसिला चला, तो वधू की विदा तक दोनों काफी नजदीक आ गए थे। विदा से पूर्व भावना भुवन को एकान्त में ले गई थी। उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर वह सिसक पड़ी थी—"यह क्या कर दिया है तुमने भुवन? अब तुम्हारा जाना ऐसा लग रहा है, जैसे तुम मेरी जान लिए जा रहे हो। कब सर्विस लगेगी तुम्हारी और कब तुम मुझे ब्याहने आओगे? मत्स्या को बता देना, तो वह मेरी माँ से तुम्हारे घर रिश्ता भेजने के लिए कह देगी। याद रखना अब जिन्दगी का एक-एक पल मेरे लिए भारी होगा।"

भुवन को यह तो याद नहीं रहा, हाँ वह चोरी-छिपे भावना से मिलने कई बार गया और अपनी बातों में उसे वहाँ तक बहा ले गया, जहाँ भँवर आ जाता है और फिर वह दिन भी आया, जब भावना के लिए एक-एक पल भारी हुआ। वह तो मत्स्यगंधा ही भावना के काम आई और जैसे-तैसे लोक-लाज बचाई जा सकी। भुवन के मित्र ने उसे खरी-खोटी सुनाई, किन्तु भुवन यह कहकर हाथ झाड़कर खड़ा हो गया कि सब भावना की मर्जी से हुआ, उसमें मैं अकेला क्यों दोषी हूँ?

और फिर यह सिलसिला बन गया। भुवनेश लड़कियों का रसिया था, उन्हें कॉलेज-कैण्टीन में नाश्ता कराता, पिक्चर दिखाता, कुछ जानबूझकर सोचतीं कि अपना उल्लू सीधा कर रही हैं, कुछ उसकी बातों में आ जातीं और कुछ की भावावेश में मर्यादायें टूट जातीं। भुवनेश को रस आता, उसका पौरुष, उसका अहंकार तृप्त होता। माता-पिता के आग्रह पर उसने कुसुम से विवाह कर लिया और एक सामान्य गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगा।

कुसुम सुनती रहती—साहब का अपनी सैक्रेटरी से चक्कर है। भुवनेश हर छः-सात महीने में अपनी सैक्रेटरी बदल देता। इंटरव्यू में अनेक युवतियाँ आतीं, कइयों को कई-कई चक्कर लगवाता, आश्वस्त करता, उनकी मजबूरियाँ जानने की कोशिश करता, उन्हें मदद करने का वादा करता और किसी न किसी बहाने अपनी रंगरेलियों का सामान जुटा लेता। न किसी स्त्री ने उसे धोखा दिया था, न किसी ने उसका दिल दुखाया था, पर उसे उनकी भावनाओं और उनके माध्यम से शरीर से खेलने में क्यों आनन्द आता था? कुसुम जान नहीं पाती थी। उसने कई बार भुवनेश को कुरेदा था, समझाया था, किन्तु वह झुँझला जाता था—"तुम अपने काम से काम रखो, समझीं। बेकार की बातें मुझे पसन्द नहीं। कौन कहता है कि मैं लड़कियों को परेशान करता हूँ। अरे, मेरे ऑफिस में मटरगश्ती नहीं चलती, कस कर काम लेता हूँ। नहीं टिक पाती लड़कियाँ तो मैं क्या करूँ? किसी के घर तो बुलाने जाता नहीं हूँ। कुछ कमी भी होती है, तो भी नौकरी दे देता हूँ, मेहनत करेंगी, सीख जायेंगी, लेकिन वे सब सज-सजाकर तफरीह करने आना चाहें, तो मेरा ऑफिस कोई सैरगाह तो नहीं है। लोगों के तो जो जी में आता है, कह देते हैं, किसी की जबान पकड़ी जा सकती है क्या?"

कुसुम निरुत्तर हो जाती और बात आई-गई हो जाती। एक बार किसी उत्सव से लौटे, तो रास्ते में कुसुम ने कहा—"श्रीमती मेहरा से तो आपके अन्तरंग सम्बन्ध लगते हैं।"

"हाँ, तुमने सही अन्दाजा लगाया। मेहरा मेरा पार्टनर है, रोज का साथ उठना-बैठना, आना-जाना है। वह तो मोटा थुलथुल है, एक बार ऑफिस आ जाये, तो फिर कहीं जाना नहीं चाहता, कोई खास कागजात आदि की जरूरत पड़ती है, तो मैं ही उसके घर जाता हूँ। श्रीमती मेहरा से हँसी-मजाक चलता रहता है। देवर-भाभी का नाता जो ठहरा...।"

कुसुम का माथा तो तभी ठनक गया था, जब भुवनेश की बात-बात पर श्रीमती मेहरा दुहरी हुई जा रही थीं। उसके बाद ऐसे अनेक अवसर आए, जब उसके सामने पति के आशिक मिजाज होने के प्रमाण एकत्रित होते गए। श्रीमती आनन्द के हाथ में अपनी जैसी अंगूठी देखकर यह चहकी थी—"अरे, आपके हाथ में यह अंगूठी कितनी अच्छी लग रही है।"

''अच्छे आदमी ने दी है, तो अच्छी लगेगी ही।''

''भाई साहब लाये होंगे''—उसने कहा।

श्रीमती आनन्द मुस्कराती हुई बोलीं—''आपके नहीं, हमारे भाई साहब ने दी है। पिछले साल हमारे विवाह की दसवीं सालगिरह थी न, बस दो-चार लोगों को बुलाकर गेट-टूगेदर किया था। इन्होंने तो भाई साहब से कहा भी था कि इतनी महँगी गिफ्ट लाने की क्या जरूरत है भाई। पर नहीं, अपने हाथों से पहना दी भाई साहब ने मुझे!'' और यह कहते-कहते श्रीमती आनन्द ने अंगूठी को चूम लिया। कुसुम देखती रह गई। सिर से पाँव तक एक गरम लकीर खिंच गई उसके शरीर में और वह औपचारिकतावश मुस्करा भी न सकी। उसने भुवनेश से कहा—''बड़ी महँगी-महँगी भेंट देते रहते हो आप अपने मित्रों को।''

''किसे क्या दिया है देवी।'' प्रसन्नता के मूड में भुवनेश ने कहा। कुसुम की बात सुनकर वह खिलखिला पड़ा—''अरे, तुम बड़ी भोली हो, झट से कोई शंका पाल लेती हो मन में। समझ रही होगी, मैं आशिक हूँ उनका। अरे भाई, आनन्द साहब ने एक बड़ा टेंडर पास करवाया था मेरा, तो मैंने सोचा—चलो इस बहाने उन्हें भी खुश कर दिया जाये।''

''क्यों, कुछ परसेंटेज नहीं दिया था उन्हें?'' कुसुम ने पूछा, तो भुवनेश ने गरजकर मुद्रा बदली—''तुम रंग में भंग मत किया करो, समझीं। न मुझे इस तरह की छींटाकशी पसन्द है, न इस तरह की जासूसी। कुछ करना चाहूँगा, तो रोक लोगी तुम मुझे? ढंग से रखता हूँ तुम्हें। अच्छा-खासा बंगला है, कपड़ों से अल्मारियाँ भरी पड़ी हैं, गहनों से लॉकर भरे हैं, खर्च पर कोई पाबन्दी नहीं, आने-जाने पर रोक-टोक नहीं, मैं तुम्हें मारता-पीटता नहीं। मेरा हँसना-बोलना भी सहन नहीं होता तुम्हें? मत चला करो मेरे साथ कहीं, समझीं। जब देखो तब नुक्ताचीनी, जब देखो, तब सवाल-जवाब। अरे तुम मेरी बीवी हो कि मैं तुम्हारा जरखरीद गुलाम? निकाल बाहर करूँगा घर से, समझीं! या यह घर ही छोड़कर चला जाऊँगा, लौटकर नहीं आऊँगा, सौ बार नाक रगड़ोगी, तब भी नहीं आऊँगा'', कुछ नशे में तो था ही, लगातार बोलता ही गया।

कुसुम ने जैसे-तैसे मामला शान्त किया और कहा—''अरे, मेरा ऐसा कोई मतलब नहीं था। मैं तो ऐसे ही कह रही थी। अच्छा, अब ऐसी कोई बात नहीं करूँगी, जो आपको बुरी लगे।'' और उसने हर तरह से खुशामद करके पति-परमेश्वर को प्रसन्न करने का प्रयास किया।

एक दिन बाजार में दुकान से कुछ लेकर पलटी ही थी कि एक व्यक्ति से टकरा गई और उसका पैकिट हाथ से गिर गया। उस व्यक्ति ने पैकिट उठाकर उसे पकड़ाया और 'सॉरी' कहा कि वह एकदम उछल पड़ी—''अरे, आलोक तुम? तुम इसी शहर में रहते हो क्या? बाप रे, तुम तो बिलकुल नहीं बदले।'' प्रसन्नता उसके चेहरे से

छलकी पड़ती थी। फिर तो खूब बातें हुईं और जब आलोक ने राजीखुशी पूछी, परिवार के विषय में जानना चाहा, तो वह उदास हो गई, बोली—"सब ठीक है, इनका अपना कारोबार है, बेटी है, इसी साल कॉलेज में आई है, पढ़ने में अच्छी है, ड्राइंग-पेंटिंग में खास रुचि है। बेटा छोटा है, अगले साल दसवीं की परीक्षा देगा।"

स्वर में उत्साह न पाकर आलोक ने कहा—"कुसुम, यहाँ इतनी बातें हार्दिकता से करने के बाद मुझे लग रहा है कि अब तुम औपचारिकता की ओर लौट रही हो। कोई बात तुम्हारे मन में है, जिसे बताना नहीं चाहती, दुराव करती हो मुझसे। इसी दुराव के लिए राखीबन्द भाई बनाया था मुझे?" उसका स्वर भारी हो आया।

कुसुम भी अन्दर की घुमड़न को रोक नहीं सकी, उसकी रुलाई फूट पड़ी। कॉफी हाउस का वह कोना अनायास उसके जीवन का एक निर्णायक स्थल बन गया।

घर जाकर कुसुम ने आलोक के विषय में भुवन को बताया, किन्तु राखीबन्दी भाई होने की बात का उल्लेख नहीं किया। रविवार के दिन सुबह नाश्ते पर उसने दोनों की भेंट भी करा दी। इसके बाद कई बार वह घर आया, तो बच्चों ने बताया कि माँ आलोक अंकल के साथ कहीं गई हैं। कई बार भुवनेश ने कहीं चलने के लिए कहा, तो उसने यह कहकर मना कर दिया कि आलोक के घर इस या उस कारण से जाना जरूरी है। चलना तो आपको भी था, पर आपका कहीं दूसरा प्रोग्राम निकल आया है, तो मैं ही किसी बच्चे को साथ लेकर हो आऊँगी। गाहे-बगाहे उसे आलोक का नाम सुनाई पड़ने लगा और धीरे-धीरे यह उसके कानों को चुभने लगा, फिर उसके मन को काटने लगा। एक दिन उसने कुसुम से कह भी दिया—"मुझे आलोक के साथ तुम्हारी घनिष्टता पसन्द नहीं। तुम मेरी दी हुई आजादी का बहुत फायदा उठा रही हो। कहाँ-कहाँ जाती हो उसके साथ, मेरे मित्र देखेंगे तो क्या कहेंगे?"

"किसी ने कुछ कहा क्या?"

कुसुम के इस प्रश्न ने आग में घी का काम किया—"क्यों, जब पानी सिर के ऊपर हो जायेगा, तभी मानोगी क्या? मेरी नाक कटाने का इतना शौक हो गया है तुम्हें? उसके घर ही जाकर क्यों नहीं रह जाती? जब देखो, तब आलोक अंकल के साथ गई हैं, आलोक आने को कह गया था, अरे, आलोक न हुआ खुदा हो गया।" भुवनेश यह देखकर चकित हो गया कि कुसुम गहरी नींद में सो गई थी, उसके बोलने का कोई मतलब ही नहीं। उसका मन किया कि झकझोर उसे उठा दे, किन्तु वह भी दिनभर का थका था, मन का गुबार निकल ही चुका था। बत्ती बुझाकर सो गया।

दूसरे दिन वह फिर बात उठाना चाहता और ठण्डे पड़े दिमाग से कुसुम को समझाना चाहता था कि उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आलोक से घनिष्टता उसे पसन्द नहीं और यह उसकी बदनामी का भी कारण बन सकती है,

किन्तु घर आने पर घर का वातावरण बोझिल सा लगा। एकदम चुप्पी। न डैक पर बजता हुआ संगीत, न बच्चों की आपसी चुहल। कुसुम मुँह लटकाये सोफे पर बैठी थी। उसे आया देखकर उठ खड़ी हुई—"आओ बैठो!" बड़े ठण्डे मन से उसने कहा और धम से सोफे में समा गई, जैसे खड़ा रहने में उसे कोई कष्ट हो। उसने आशंकित नेत्रों से कुसुम की ओर देखा, वह शून्य निगाहों से उसकी ओर देखकर धरती की ओर देखने लगी। भुवनेश के मन का चोर बोला—"क्या बात है, बोलती क्यों नहीं? तुम्हारा आलोक ठीक-ठाक तो है, उसे कुछ हुआ तो नहीं है?"

कुसुम ने चौंककर उसकी ओर देखा, बोली—"आलोक? आलोक को क्या होगा? यह तो तुम्हारी बेटी ने मेरे मुँह में दही जमा दिया है। अपने साथ-साथ हमारा भी मुँह काला कर दिया उसने।"

बीच में ही बात काटकर वह बोला—"क्या कहती हो कुसुम? ऐसी ही देखभाल की है तुमने मेरे बच्चों की? ऐसी ही निगरानी रखी है जवान होती बेटी की? तुम तो अपनी रंगरेलियों में व्यस्त हो, तुम्हें क्या चिन्ता है घर की, बच्चों की? जो बिगड़ता हो बिगड़े, जो बनता हो बने, तुम्हारी बला से। कहता था, ये ड्राइंग, ये पेण्टिंग, ये प्रदर्शिनियाँ ठीक नहीं है, पर न तुम्हारी समझ में आता था और न तुम्हारी बेटी की, अब भुगतो। जैसा बोया है, वैसा काटो और मुझे जहर दे दो। मैं यह सब देखने के लिए जिन्दा नहीं रहना चाहता, समझीं? या इस लड़की को कहीं ले जाओ और इस बीमारी से पीछा छुड़ाओ, समझीं कि नहीं?"

कुसुम हताशा के स्वर में बोली—"बहुत समझा चुकी हूँ, वह राजी ही नहीं होती। कहती है निमेष लौटेगा और वे लोग विवाह करेंगे। अपनी प्रदर्शनी के सिलसिले में कलकत्ता गया है, लौटने ही वाला है।"

"कौन निमेष, कैसा निमेष? अरे, मैं उसके लिए एक से एक अच्छा लड़का देखने में लगा हूँ और वह न जाने किस फटीचर निमेष से पल्ला बाँधने चली है। समझाओ उसे, ये कलाकार भूखे मरते हैं, भूखे। जिस ऐशोआराम में पली है, उसकी छाया भी नहीं छू पायेगा, तरस जायेगी ऐसी जिन्दगी के लिए। ए.सी. में पड़ी रहती है, झुलस जायेगी चार दिन में। खाने में पनीर से नीचे बात नहीं करती, तरस जायेगी देखने के लिए। दूर के ढोल सुहावने लगते हैं। बुलाओ उसे, मैं बात करता हूँ उससे," वह विफर रहा था।

कुसुम ने टालना चाहा—"वह सामना नहीं करना चाहती आपका, सहम गई है जब से मुझ से बात हुई है। मैं उसके रंगढंग देखकर पूछ बैठी, तो डरते-डरते उसने मुझे बताया।"

"क्यों, क्या ढिंढोरा पीटते हुए बताती और तुम कहना क्या चाहती हो? तुम्हें इसमें कुछ गलत नहीं लगता? बहकावे में आ गई कमबख्त, ऐसा क्या प्रलोभन दिया नालायक ने? तुम जानती हो उस लड़के को, मिली हो उससे?"

सीधा-साधा और बड़ा सौम्य लड़का है।

भुवनेश ने उसकी बात काट दी—''सीधा-सादा कहती हो उसे? अरे, तुम्हारी अकल घास चरने गई है क्या? गजब करती हो, यह गुल खिलाया है नालायक ने और तुम उसे सीधा-साधा कह रही हो?'' वह अपने आपे में नहीं था, जोर से चिल्लाया—''शुभांगी! इधर आओ।'' और पत्ते-सी काँपती शुभांगी सामने आ खड़ी हुई। मासूम-सी श्यामवर्णी तन्वंगी। सिर झुका हुआ। भुवनेश ने कई जगह बात चलाई थी, किन्तु शुभांगी का रंग और कद आड़े आ जाता, फिर भी भुवनेश को विश्वास था कि उसके ऐश्वर्य की चकाचौंध में शुभांगी की ये कमियाँ नजरअन्दाज हो जायेंगी और उसे योग्य घर-वर मिल जायेगा। अभी तो कोई जल्दी भी नहीं थी, वर-सन्धान आरम्भ ही किया था। शुभांगी को सामने देखकर वह गरजा—''कौन है यह निमेष?''

शुभांगी ने नजरें झुकाए हुए ही कहा—''कॉलेज में ड्राइंग पेंटिंग में लैक्चरर हैं।''

''तुम्हें पढ़ाता है?''

''नहीं, पापा, गर्ल्स कॉलेज में हैं।''

''तुम कब से जानती हो उसे?''

''यूनिवर्सिटी में प्रदर्शनी लगी थी, तभी मिले थे।''

''हूँ, तो अपने कॉलेज की किसी लड़की को नहीं फँसाया उसने, तुम पर डोरे डाले, क्यों? कैसे फुसला लिया उसने तुम्हें?''

शुभांगी चुप—''तुम्हारी पेंटिंग की तारीफ की होगी, कहा होगा—तुम में एक महान कलाकार के बीज छिपे हैं, थोड़ी मेहनत करो, अच्छी गाइडेंस मिल जाये, तो बस, फिर क्या है, तुम तो कला के आकाश में चाँद बनकर चमक सकती हो, और गाइडेंस की क्या बात है, जब जो चाहो मुझसे पूछ सकती हो। मैं भी तो इसी साधना में लीन रहता हूँ। आना चाहो, मेरे घर आ सकती हो, या मुझे बुला सकती हो। तुम्हारा नाम होगा, तो मुझे बड़ी खुशी होगी और तुम, इन्हीं चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गईं। अरे, जब तुम्हारी माँ उसे सीधा-साधा और सौम्य कह सकती है, तो तुम तो अभी बच्ची हो। बेटा, तुम्हारा कसूर नहीं। तुम्हारी माँ ने तुम्हें ऊँच-नीच नहीं समझायी, सारी गलती इनकी है।''

शुभांगी चकित नेत्रों से पिता की ओर देख रही थी। ये कैसे अन्तर्यामी-से बोल रहे हैं। माँ तो कहती थी, खाल खींच लेंगे। यह तो इतनी सहानुभूति से बात कर रहे हैं। थोड़ी देर चुप रहकर उन्होंने शुभांगी को अपने पास बुलाया, बिठाया, फिर पूछा—''यह कब हुआ?''

''क्या पापा?''

''मैं बता दूँगी आपको, इसे जाने दीजिए।'' कुसुम बोली।

''नहीं, मैं इसी से पूछूँगा। जब, तब इसे शर्म नहीं आई, तो अब शर्माने की क्या बात है?''

''पापा! हम एक प्रदर्शनी से लौट रहे थे कि मूसलाधार पानी बरसने लगा। मैं भीग गई और मुझे कई छींकें आईं, तो वे मुझे अपने घर ले गए। मैंने अपने कपड़े सुखाने को डाल दिया और उन्हीं का कुर्त्ता-लुंगी पहन लिया था, पर मेरी छींकें नहीं रुक रही थीं। फिर उन्होंने कॉफी बनाकर पिलाई...पापा! प्लीज, मुझे जाने दीजिए पापा।''

''नहीं?'' कड़ककर भुवनेश ने कहा—''आगे बोलो, क्या हुआ?''

''पापा! मैंने कहा—सर, आप तो बहुत अच्छे हैं। कितनी सहानुभूति और प्यार है आपके व्यवहार में। घर में तो मैं जब परेशान होती हूँ और चाय-कॉफी के लिए सरवेंट से कहने के लिए भाई से कहती हूँ, तो बैठा-बैठा कॉमिक्स पढ़ता रहेगा, लेकिन मेरा इतना भी काम नहीं करता। सॉरी पापा! मैंने यह भी कहा—मेरी माँ अस्थमेटिक हैं, जब माँ को तकलीफ होती है, तो मैं ही देखभाल करती हूँ, पापा तो आराम से सोते रहते हैं। माँ से यह और कह देते हैं मुझे चैन से सोने दो, शुभांगी के कमरे में चली जाओ।

''मेरी बातें सुनकर उन्होंने कहा, 'शुभांगी, अब मैं भी घर बसाने की सोच रहा हूँ। यदि तुम मुझे पसन्द करो, तो मैं तुम्हारे पापा से तुम्हें सदा के लिए माँग लूँ।' फिर मुझे बड़ी जोर की छींक आई और प्याला हाथ से छूट गया। मैं रुआँसी-सी हो गई, तो उन्होंने मुझे हृदय से लगा लिया...पापा। प्लीज...अब मैं आपको क्या बताऊँ?''

''अच्छा छोड़ो! कहाँ गया है वह?''

''कलकत्ता गए हैं। कला अकादमी में उनका इण्टरव्यू भी था और एक प्रदर्शनी में उनकी भागीदारी भी। अगर नियुक्ति हो गई और उन्होंने ज्वाइन कर लिया, तो यहाँ त्यागपत्र भेज देंगे और दशहरे की छुट्टियों में आएँगे। नहीं तो लौट आए होंगे या लौट आने वाले होंगे।''

''तुमने पता नहीं लिया? अच्छा तो तुम्हें कब पता चला?''

''क्या पापा?''

''अरे यही, जो तुम्हारी माँ बता रही है?''

''मुझे भी माँ बता रही है पापा। मुझे कुछ मालूम नहीं था।''

''क्या बकती हो? तुम कॉलेज में पढ़ती हो और तुम इतना भी नहीं जानतीं कि कैसे क्या होता है?''

कुसुम से अब चुप नहीं रहा गया। उसने शुभांगी से जाने के लिए कहा और भुवनेश से बोली—''सब बात तो कर ली, अब क्या बाकी रह गया पूछने को? नासमझ है, पढ़ने-लिखने में रही है हमेशा, इन सब बातों को नहीं जानती। आग और

फूँस का साथ है। जवानी में युवक और युवती का एकान्त। तुमसे भी ज्यादा कोई जानता है इसे ?''

सुनकर भुवनेश चौंका, लेकिन आज वह कुछ बोल नहीं सका। थका-थका-सा चुप रह गया फिर जैसे हथियार डालते हुए बोला—''अब क्या कहती हो कुसुम। मेरा तो दिमाग फटा जा रहा है।''

''अब आप आराम कीजिए। नहाकर आइए, मैं खाना लगवाती हूँ। इस मामले में फिर बात करेंगे।''

'कैसा आराम, आराम तो हराम हो गया' मुँह ही मुँह में बुदबुदाता हुआ वह अपने कमरे की सीढ़ियाँ चढ़ गया। खाना खाने के बाद उसे गहरी नींद आ गई। आलोक को लेकर उसके दिमाग में उधेड़बुन चल रही थी, यह नया आघात उसे भीतर तक बींध गया। उसका दिमाग जैसे शून्य हो गया। वह कुछ सोचने की स्थिति में नहीं था। सुबह उठा, तो उसे तेज बुखार था, आँखें भी नहीं खुलती थीं। डॉक्टर आया, ब्लडप्रेशर देखा, बहुत हाई था। उसने दवाइयाँ दीं और बातचीत करने से मना कर दिया, मिलने-जुलने से मना कर दिया। कुसुम घबरा गई। भागदौड़ करने के लिए नौकर-चाकर थे, किन्तु आलोक भी दिन में तीन-चार बार आकर देख जाता, डॉक्टर से बात करता, कुसुम को सान्त्वना देता।

दो दिन इसी तरह बीत गए, तीसरी सुबह भुवनेश नींद से उबर रहा था, किन्तु उसकी आँखें नहीं खुल रही थीं। उसके कानों में कुछ स्वर टकरा रहे थे। आलोक कह रहा था—''मैं सोचता हूँ कुसुम बहन, किसी दूसरे डॉक्टर को भी दिखा लिया जाये।'' कुसुम का जवाब था—''नहीं भैया। वो हमारे फैमिली डॉक्टर हैं, शुरू से इन्हीं को दिखाया है। कह रहे थे—अब स्थिति कंट्रोल में है। वे कहेंगे तो जरूर किसी और को दिखा लेंगे। आज डॉक्टर आएँगे, तो उनसे पूछ लेगी। आपने निमेष के बारे में पता किया ?''

''हाँ, उसका त्यागपत्र आ गया है। वहाँ उसकी नियुक्ति हो गई है, तुम चिन्ता न करो। मैंने शुभांगी के सीरियस होने का तार दे दिया है। वह आता ही होगा।''

''हे भगवान, मैं तो चाहती हूँ, ये जल्दी से जल्दी ठीक हो जायें! तुम्हें लेकर भी इनके दिमाग में एक कीड़ा कुलबुलाया करता है। सच, बड़ी पछता रही हूँ मैं कि मुझे ये क्या सूझी ? तुम्हें भी बिना बात गुनहगार समझते हैं ये।''

''यह तो तुम चाहती ही थी बहन। सब ठीक होगा, चिन्ता मत करो। सच्चाई जानेंगे, तो सब गिले-शिकवे दूर हो जायेंगे।''

और भुवनेश सोच रहा था—सचमुच अब उसे किसी से गिला-शिकवा नहीं। निमेष ने आते ही कितनी मासूमियत से कहा था—''अरे, यहाँ तो अंकल की तबीयत खराब है। शुभांगी को क्या हुआ आंटी ?''

''बीज बोओगे, तो अंकुर नहीं फूटेगा ? यहाँ तो बम फूट पड़ा है, बम, समझे ? तुम

दोनों ने हमें कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं रखा है। इसीलिए मुँह छिपाए पड़ा हूँ और अब उठने वाला भी नहीं। उठूँगा, सीधे ऊपर उठूँगा, समझे ?'' भुवनेश बिफर गया था।

निमेष को बात समझने में कुछ क्षण लगे, फिर वह एकदम बोला—''अंकल मैं आपका अपराधी हूँ। मुझे क्या मालूम था कि शुभांगी शकुन्तला साबित होगी। लेकिन मैं दुष्यन्त नहीं हूँ। मेरी गर्दन आपके सामने झुकी है, आप चाहें तो मेरी गर्दन उड़ा दें, और चाहे तो शुभांगी का हाथ मेरे हाथ में देकर जीवन-दान दे दें। अपराध तो हुआ है, अक्षम्य अपराध है अंकल। लेकिन हमें नादान समझकर, अपना बच्चा समझकर माफ कर दें। हमें अपना आशीर्वाद दें। यही कह सकता हूँ।'' और निमेष ने आगे बढ़कर भुवनेश के चरण पकड़ लिये थे। लेटा-लेटा वह सिहर गया था। उसने कितनी युवतियों को रोता छोड़ा था, कितनी की गालियाँ खाई थीं, कितनों को नर्सिंग होम भेजा था, शायद गिनना भी मुश्किल था। न उनके नाम याद थे, न और कुछ। निमेष किसी और ही लोक का जान पड़ रहा था। उसका शरीर रुई जैसा हलका हो गया था।

''मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है बेटा।'' कहते-कहते उसे नींद आ गई थी और अब पंडित जी वर-वधू को आशीर्वाद देने के लिए, वधू का हाथ वर के हाथ में देने के लिए उसे पुकार रहे थे, उसने गीली होती आँखों की कोरों को पोंछा और लग्न-मंडप की ओर बढ़ गया।